ऊर्ध्वाम्नाय श्रीपीठ, सर्वेश्वरी श्री श्रीजी मन्दिर (बड़ी हवेली)
श्रीजी दरबार से ब्रह्मचारी बालकों के लिये प्रारम्भिक शिक्षा-पत्र

श्री सर्वेश्वरो विजयते
वेद-शास्त्रानुशासनम्

मिमाहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ।। (ऋग्वेद ११३८।१४)

-हे विद्वान् ! तू वेदवाणी को मुख में कर ले, उसे कण्ठस्थ कर और उस वेदवाणी को मेघ के समान गर्जना करते हुए दूर-दूर तक गम्भीर स्वर से फैला, उसका उपदेश कर और गायत्री छन्द में कहे स्तुति युक्त वेद-वचन समूह को स्वयं गान कर, पढ़ और पढ़ा ।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ (मनु. २। ६)

संपूर्ण वेद, (मनुआदि) वेदके जाननेवालोंकी स्मृति और उनका धार्मिकोंका आचार और (जिन विषयको स्मृतिमें विकल्पसे लिखा है केवल उनमें) अपने मनकी प्रसन्नता ये धर्मके मूल हैं।

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति । (मनु)

भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल में जो भी कुछ था है और होगा यह सब वेदों से ही सिद्ध हुआ है और होगा।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते । धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाण परमं श्रुतिः ॥ (मनु. २। १३)

अर्थ और काम में जो आसक्त नहीं हैं उनको परम धर्म (आत्मोपदेश)का उपदेश किया जाता है। धर्मको जाननेकी इच्छा करनेवालोंको वेदही उत्तम प्रमाण हैं ।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ २६ ॥ (मनु. २।२६)

द्विजातियोंके इस लोक और परलोकमें पवित्र करनेवाले गर्भाधान आदि शरीरसंस्कार, वेदोक्त पवित्र मंत्रोंकी विधिसे करने चाहियें।

गाभैर्होमैर्जातकर्म चौडमौञ्जीनिबन्धनैः । बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।। (मनु. २। २७)

गर्भ शुद्ध करनेवाले हवनोंसे और जातकर्म, मुंडन और उपनयन इन संस्कारोंसे द्विजातियोंके गर्भ और बीजका दोष मिट जाता है।

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः । महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः। (मनु.२। २८)

वेद के पढने से, व्रतों से , हवनोंसे, त्रैविद्य नाम व्रतसे देव ऋषि-पितृ-तर्पण से, महायज्ञ और यज्ञोंसे यह शरीर मोक्ष अर्थात स्वरूपानुसन्धान के के योग्य हो जाता है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ । ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

(गीता १६। २३-२४)

-हे भारत!'जो मनुष्य शास्त्रविधिको छोड़कर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरणकी शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को और न परमगतिको ही प्राप्त होता है। अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है-ऐसा जानकर तुझे इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य-कर्म करनेयोग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधिके अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।' शास्त्र के अनुसार आचरण करने वाले ही मनुष्य कहलाते हैं, मनमाना आचरण करने वाले तो वानर ही हैं-

मतयो यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः । शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति ते नराः ।।
वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च। अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥

(महाभारत, उद्योग० ३६। ३०)

सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये। धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता; किन्तु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये।'

एतद् देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ।।

पुरातन समय में,इस देश आर्यावर्त में जन्मे उच्च आचरण वाले अग्रजन्मा ऋषियों से / ब्रह्मचारियों, पृथ्वी के समस्त मानव चारित्रिक शिक्षा ग्रहण करते थे।

आचारप्रभवो धर्मः धर्मस्य प्रभुरच्युतः । आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः ॥

(नारदपुराण, पूर्व० ४। २२)

'आचारसे धर्म प्रकट होता है और धर्मके स्वामी भगवान् नारायण हैं। अतः जो अपने आश्रमके आचारमें संलग्न है, उसके द्वारा भगवान् श्रीहरि सर्वदा पूजित होते हैं।'

आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः । परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान् भवेत् ॥

(शिवपुराण, वा० उ० १४। ५६)

'आचारहीन मनुष्य संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता। इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये।'

सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते। वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति ॥

(महाभारत, अनु० १४३। ५१)

लोक में यह सारा ब्राह्मण समुदाय अपने सदाचार से ही अपनी पद पर बना हुआ है, सदाचार में स्थित रहने वाला शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो सकता है।

आचारवान् सदा पूतः सदैवाचारवान् सुखी। आचारवान् सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ॥

(श्रीमद्भगवती भागवत ११। २४। ९८)

(भगवान् नारायण बोले-) नारद ! आचारवान् मनुष्य सदा पवित्र, सदा सुखी और सदा ही धन्य है - यह सत्य है, सत्य है।'

समयानुसार कर्तव्याकर्तव्य

रेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तगते रवौ। प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः ॥
तस्मात्प्रातस्तनात्कालात्त्रिमुहूर्तस्तु सङ्गवः। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालात्तु सङ्गवात् ॥
तस्मान्माध्याह्निकात्कालादपराह्न इति स्मृतः। त्रय एव मुहूर्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः ॥
अपराह्णे व्यतीते तु कालः सायाह्न एव च। दशपञ्चमुहूर्ता वै मुहूर्तास्त्रय एव च ।

(विष्णुपुराण २।८।६१-६४)

दो घटी अर्थात् अड़तालीस मिनटका एक मुहूर्त होता है। पन्द्रह मुहूर्तका एक दिन और पन्द्रह मुहूर्तकी एक रात होती है। सूर्योदयसे तीन मुहूर्तका 'प्रातःकाल अर्थात 2 घण्टा 24 मिनट ', फिर तीन मुहूर्तका 'संगवकाल', फिर तीन मुहूर्तका 'मध्याह्नकाल', फिर तीन मुहूर्तका 'अपराह्नकाल' और उसके बाद तीन मुहूर्तका 'सायाह्नकाल' होता है।

प्रातःकालो मुहूर्तास्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्नस्ततः परम् ॥
सायान्हस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्। राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ।।

(मत्स्यपुराण २२।८२-८३; पद्मपुराण, सृष्टि० ११।८३-८५)

मनुष्यको चाहिये कि वह स्नान आदिसे शुद्ध होकर पूर्वाह्नमें देवता-सम्बन्धी कार्य (दान आदि), मध्याह्नमें मनुष्य-सम्बन्धी कार्य और अपराह्नमें पितर-सम्बन्धी कार्य करें। असमयमें किया हुआ दान राक्षसोंका भाग माना गया है। पूर्वाह्न देवताओंका मध्याह्न मनुष्योंका, अपराह्न पितरोंका और सायाह राक्षसोंका समय माना गया है।

ऋषयो नित्यसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥ तस्मात् तिष्ठेत् सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः ।

(महाभारत, अनु० १०४।१८-१९)

ऋषियोंने प्रतिदिन सन्ध्योपासन करनेसे ही दीर्घ आयु प्राप्त की थी। इसलिये सदा मौन रहकर द्विजमात्रको प्रतिदिन तीन समय सन्ध्या करनी चाहिये। प्रातःकालकी सन्ध्या ताराओंके रहते-रहते, मध्याह्नकी सन्ध्या सूर्यके मध्य-आकाशमें रहनेपर और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें चले जानेपर करनी चाहिये।

स्वप्नमध्ययनं स्नानमुद्वर्तं भोजनं गतिम् । उभयोः सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने चैव वर्जयेत् ॥

(पद्मपुराण, स्वर्ग० ५५।७१-७२; कूर्मपुराण, उ०१६।७१)

मल-मूत्रका त्याग, दातुन, स्नान, श्रृंगार, बाल सँवारना, अंजन लगाना, दर्पणमें मुख देखना और देवताओंका पूजन- ये सब कार्य पूर्वाह्नमें करने चाहिये।

स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत् । (मार्कण्डेयपुराण ३४।७३; स्कन्दपुराण)

दोनों सन्ध्याओं तथा मध्याह्न के समय शयन, अध्ययन, स्नान, उबटन लगाना, भोजन और यात्रा नहीं करनी चाहिये।

स्वापेऽध्वनि तथा भुञ्जन् स्वाध्यायं च विवर्जयेत्। (ब्रह्मपुराण २२१।७०)

दोनों सन्ध्या के समय सोना, पढ़ना और भोजन करना निषिद्ध है।

रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ (मनुस्मृति ४।७३; विष्णुधर्मोत्तर० ३।२३३।१६५)
'नक्तं सेवेत न द्रुमम्' (शुक्रनीति ३।२९)

रात्रिमें पेड़के नीचे नहीं रहना चाहिये।

छिनत्ति वीरुधो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे। पत्रं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति ॥ (विष्णुपुराण २।१२।१०)
वनस्पतिं च यो हन्यादमावस्यामबुद्धिमान्। अपि ह्येकेन पत्रेण लिप्यते ब्रह्महत्यया ।। (महाभारत, अनु० १२७।३)

अमावस्याके दिन जो वृक्ष, लता आदिको काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

पर्वकाले तु सम्प्राप्ते यो वै च्छेदनभेदनम्। करिष्यति नरो मोहात् तमेषानुगमिष्यति ॥

(महाभारत, शान्ति० २८२।४१)

संक्रान्ति, ग्रहण, पूर्णिमा, अमावस्या आदि पर्वकाल प्राप्त होनेपर जो मनुष्य वृक्ष, तृण और ओषधियोंका भेदन-छेदन करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है।

शयन

प्राच्यां दिशि शिरश्शस्तं याम्यायामथ वा नृप। सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम् ॥ (विष्णुपुराण ३। ११। ११३)
सदैव वर्ज्य शयनमुदक्शिरास्तथा प्रतीच्यां रजनीचरेश। (वामनपुराण १४। ५१)
नोत्तरापरावाविशराः । (विष्णुस्मृति ७०)

सदा पूर्व या दक्षिणकी तरफ सिर करके सोना चाहिये। उत्तर या पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे आयु क्षीण होती है तथा शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं।

प्राक्शिरःशयने विद्याद्धनमायुश्च दक्षिणे। पश्चिमे प्रबला चिन्ता हानिमृत्युरथोत्तरे ॥ (भगवंतभास्कर, आचारमयूख)

पूर्वकी तरफ सिर करके सोनेसे विद्या प्राप्त होती है। दक्षिणकी तरफ सिर करके सोनेसे धन तथा आयुकी वृद्धि होती है। पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे प्रबल चिन्ता होती है। उत्तरकी तरफ सिर करके सोनेसे हानि तथा मृत्यु होती है अर्थात् आयु क्षीण होती है।

अवाङ्मुखो न नग्नो वा न च भिन्नासने क्वचित्। न भग्नायान्तु खट्वायां शून्यागारे तथैव च ॥ (लघुव्याससंहिता २। ८८-८९)

अधोमुख होकर, नग्न होकर, दूसरेकी शय्यापर, टूटी हुई खाटपर तथा जनशून्य घरमें नहीं सोना चाहिये।

'नार्द्रपादस्तु संविशेत्' (मनुस्मृति ४। ७६; अत्रिस्मृति ५। २५; महाभारत, अनु० १०४।६१)
'नार्द्रपादः स्वप्यात्' (विष्णुस्मृति ७०)
अनार्द्रपादः शयने दीर्घा श्रियमवाप्नुयात् ॥ (अत्रिस्मृति ५। २६)

भीगे पैर नहीं सोना चाहिये। सूखे पैर सोनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है।

न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रिषु ॥ (महाभारत, अनु० २४३। ६)
'दिवास्वापं च वर्जयेत्' (नारदपुराण, पू० २६। २७)
हित्वा प्राक्पश्चिमौ यामौ निशि स्वापो वरो मतः । (शुक्रनीति ३।११५)

दिनमें कभी नहीं सोना चाहिये। रातके पहले और पिछले भागमें भी नींद नहीं लेनी चाहिये। रातके प्रथम और चतुर्थ पहरको छोड़कर दूसरे और तीसरे पहरमें सोना उत्तम होता है।

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोभ्युदितश्च यः। प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ।। (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४।९०)

जिसके सोते सोते सूर्योदय अथवा सूर्यास्त हो जाय, वह महान् पापका भागी होता है और बिना प्रायश्चित्त (कृच्छ्रव्रत) के शुद्ध नहीं होता।

सूर्येणाभ्युदितो यश्च त्यक्तः सूर्येण वा स्वपन् । अन्यत्रातुरभावात्तु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥ (विष्णुपुराण ३। ११। १०२)

जो मनुष्य रुग्णावस्थाको छोड़कर सूर्योदय अथवा सूर्यास्तके समय सोता है, वह प्रायश्चित्तका भागी होता है।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः । (अष्टांगहृदय, सूत्र० २। १)
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् । (देवीभागवत ११।२।२)
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्धितमात्मनः । (व्यासस्मृति ३।७१)
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय धर्मार्थावनुचिन्तयेत् ।। (लघुव्याससंहिता १।१)
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् । (मनुस्मृति ४।९२)
ब्राहो मुहूर्त चोत्थाय मनसा मतिमान्नृप। प्रबुद्धश्चिन्तयेद्धर्ममर्थं चाप्यविरोधिनम् ।। (विष्णुपुराण ३।११।५)

स्वस्थ मनुष्यको आयुकी रक्षाके लिये ब्राह्ममुहूर्तमें उठना चाहिये। धर्म और धर्म सम्मत अर्थ का चिंतन करना चाहिये।

शौचाचार

मलमूत्र त्याग करने से पहले जनेऊ दाहिने कान पर चढ़ायें ।

शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ततः शौचं समाचरेत् ॥ (पद्मपुराण, क्रियायोग० ११।९)

सिरको वस्त्रसे ढककर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये।

न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम्। न देवदेवालययोरपामपि कदाचन ॥
(पद्मपुराण, स्वर्ग० ५२।४२-४३; कूर्मपुराण, उ० १३।४१)

अग्नि,सूर्य, गौ, ब्राहाण, गुरु, स्त्री, चन्द्रमा, आती हुई वायु, जल और देवालय-इनकी ओर मुख करके (इनके सम्मुख) मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। शौच में शुद्धि हेतु सात बार मिट्टी से हाथ धोने चाहिये। पैर धोने चाहिये।

अथ मूत्रे चत्वारो गण्डूषाः पुरीषे द्वादशाष्टौ वा भोजनान्ते षोडश कार्याः । (धर्मसिन्धु ३ पू० आह्निक०)
पुरीषोत्सर्जने कुर्याद् गण्डूषान् द्वादशैव तु ॥ चतुरो मूत्रविक्षेपे नाऽतो न्यूनान् कदाचन । (देवीभागवत ११। २।३३-३४)

मल-त्यागके बाद बारह बार और मूत्र त्यागके बाद चार बार कुल्ला करना चाहिये। भोजनके बाद सोलह बार कुल्ला करना चाहिये।

स्नान

स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः सन्ध्योपासनमेव च। स्नानाचारविहीनस्य सर्वाः स्युः निष्फलाः क्रियाः ॥ (वाधूलस्मृति ६९)
न हि स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्मसु स्मृतम् ॥ (लघुव्याससंहिता १।७)
अस्नातो नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ।। (बृहत्पराशरस्मृति २।९३)

स्नान किये बिना जो पुण्यकर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है। उसे राक्षस ग्रहण कर लेते हैं।

दुःस्वप्नदर्शने चैव वान्ते वा क्षुरकर्मणि सद्यः स्नानं विधीयते ॥ (बृहत्पराशरस्मृति ८ । २७१)

दुःस्वप्न देखने पर, हजामत बनवाने, वमन होने, और श्मशानभूमिमें जानेपर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये।

'स्नायाच्छिरः स्नानतया च नित्यम्' (वामनपुराण १४।५३)
शिरो विवर्ज्य न स्नायान्निमज्जेतामुना सह। (शाण्डिल्यस्मृति २।५७)
शिरः स्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च ।। (महा. अनु. १०४। १२५)

पुरुषको नित्य सिरके ऊपरसे स्नान करना चाहिये। सिरको छोड़कर स्नान नहीं करना चाहिये। सिरके ऊपरसे स्नान करके ही देवकार्य तथा पितृकार्य करने चाहिये।

स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः ॥ न चानुलिम्पेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धनेत् । (महाभारत, अनु० १०४।५१-५२)

स्नानके बाद अपने अंगोंमें तेलकी मालिश नहीं करनी चाहिये तथा गीले वस्त्रोंको झटकारना नहीं चाहिये।

प्रणाम

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ।। (मनुस्मृति २।१२१)
"चत्वारि सम्यग्वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥ (भविष्यपुराण, ब्राह्म० ४।५०)

नित्य वृद्धजनोंको प्रणाम करनेसे तथा उनकी सेवा करनेसे मनुष्य की आयु, विद्या (बुद्धि, कीर्ति), यश और बल बढ़ते हैं।

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ॥ आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत्। (महाभारत, अनु० १०४।४३-४४)

प्रतिदिन प्रातःकाल, सोकर उठनेके बाद पहले माता-पिताको दण्डवत प्रणाम करे। फिर आचार्य तथा अन्य गुरुजनोंका अभिवादन दण्डवत करे। इससे दीर्घायु प्राप्त होती है।

शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ (मनुस्मृति २।११९)
यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥ (मनुस्मृति २।२०२)

स्वयं आसनपर बैठा हो तो उठकर और सवारीपर बैठा हो तो उससे उतरकर गुरुजनोंको प्रणाम करना चाहिये।

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति। प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।।
(मनुस्मृति २। १२०; महाभारत, उद्योग० ३८। १)

वृद्ध पुरुषके आनेपर युवा मनुष्यके प्राण ऊपर उठने लगते हैं और जब वह उठकर प्रणाम करता है, तब वह पुनः प्राणोंको वास्तविक स्थितिमें प्राप्त कर लेता है।

वेदमाता गायत्री/ सावित्री

“गायंतस्त्रायसे देवि तद्गायत्रीति गद्यसे ।”

जो प्राणों की रक्षा करती है, जिसके सदअनुष्ठान से जीवन जीवन बनता है, जो गाने वालों की, उसका निरन्तर अभ्यास करने वालों की, त्रिविध ताप से रक्षा करती है, वह गायत्री है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।। (ऋग्वेद 3।62।10)

ये गायत्री मंत्र है इस गायत्री मंत्र के तीन पाद और २४ अक्षर है। गायत्री के तीन पाद हैं –

प्रथम पाद है: "भूमिरन्तरिक्षंद्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षर ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु ह वास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद। (बृह० 5।14।1)
भूमि अंतरिक्षं, द्यौ ये आठ अक्षर है। **“तत्सवितुर्वरणीयम्”**

गायत्री के प्रथम पाद में भी आठ अक्षर हैं. वरेण्यम् के स्थान में वरणीयम् समझने से आठ अक्षर पूरे हो जाते हैं। अर्थात् तीनों लोक गायत्री का प्रथम पाद है। बृहदारण्यकी श्रुति है कि वह तीनों लोकों को जीतता है जो गायत्री के लोकत्रयी रूप इस प्रथम पाद की उपासना करता है।

द्वितीय पाद है:' **ऋचो यजूंषि सामानि।'**
ये आठ अक्षर है- **“भर्गो देवस्य धीमहि।”**

गायत्री के द्वितीय पाद में भी आठ अक्षर हैं अर्थात् तीनों वेद गायत्री का द्वितीय पाद है। बृहदारण्यकी श्रुति है कि वह वेदत्रयी के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है जो गायत्री के वेदत्रयी रूप द्वितीय पाद की उपासना करता है।

तृतीय पाद है: **प्राणापान व्यान**
ये आठ अक्षर हैं -”**धियो यो नः प्रचोदयात्।**”

गायत्री के तृतीय पाद में भी आठ अक्षर है अर्थात सम्पूर्ण प्राणी गायत्री के तृतीय पाद में आते हैं। बृहदारण्यकी श्रुति है कि जो इस प्रकार उपासना करता है, वह सम्पूर्ण प्राणियों को जीतता है।

गायत्री का चौथा पाद तुरीय स्वरूप है जो रज तम आदि से पर दर्शनीय पद ब्रह्मरूप है। यही सर्वान्तरात्मा सूर्यादि रूप होकर सबके ऊपर तपता है। श्रुति कहती है कि वह इसी प्रकार श्री तथा यश से तपता है जो गायत्री के इस तुरीयपाद की उपासना करता है।

भगवान ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि-

भूर्भुवः स्वरिति चैव चतुर्विंशाक्षरा तथा । गायत्री चतुरो वेदा ओंकारः सर्वमेव तु ।। (ब्र० यो० याज्ञ० 2।66)

भूर्भुवः स्वः ये तीन महाव्याहृतियां, चौबीस अक्षर वाली गायत्री तथा चारों वेद निस्संदेह ओंकार स्वरूप हैं ।

ऋषि कहते हैं कि-

ब्रह्म गायत्रीति ब्रह्मवै गायत्री। (शत० ब्र० 8 ।5 ।3 ।7 एत० ब्र । ३० । 7 ख०5)

ब्रह्म गायत्री है, गायत्री ही ब्रह्म है।

गायत्री परदेवतेति गदिता ब्रहौव चिद्रूपिणी। (गायत्री पु०)

गायत्री परम श्रेष्ठ देवता और चित् रूपी ब्रह्म है।

सैषा गायत्र्यै तस्मिस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वैतत्सत्ये प्रतिष्ठितम्। (बृ०5।14।4)

श्रुति कहती है कि यह लोक त्रयी, वेदत्रयी, सर्वप्राणस्वरूप त्रिपदा गायत्री इस चतुर्थ तुरीय पद में प्रतिष्ठित है इस प्रकार तुरीय चेतन रूप यह गायत्री प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्वयं ज्योतिः प्रत्यगात्मा रूप से स्थित है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोकत्रयी वेदत्रयी और प्राणत्रयी वेद माता से ही उत्पन्न हैं –

गायत्री वेद जननी गायत्री पापनाशिनी । गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेहच पावनम् ।।

(याज्ञ० स्मृ०)

गायत्री वेद जननी है, पातक हारिणी है इससे अधिक पवित्र दिव्य वस्तु लोक और संसार में कोई भी नहीं है।

'गायत्री छन्दसां मातेति। (महा० नारायणोपनिषद 15।1)

'गायत्री वेद माता हैं।

'गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच.....। (छा.3।12।1)

यह सारी सृष्टि गायत्री हैं अथवा दृश्यमान जगत् की सारी सृष्टि में चर-अचर जो कुछ है, गायत्री हैं।

आयाहि वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनी । गायत्री छन्दसां मातर्ब्रह्मयोनिर्नमोऽस्तुते ।
ओम् गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि नहि
पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति । (5।14।6)

हे माता गायत्री। त्रैलोक्य पाद से आप एक पाद वाली हो. त्रयी विद्या रूप द्वितीय पाद से द्विपदी हो, प्राणादि तृतीय पाद से तुम त्रिपदी हो. तुरीय रूप चतुर्थ पाद से तुम चतुष्पदी हो अर्थात् तुम्हारे अनेक पाद हैं।

जपनीय गायत्री मंत्र के सम्बन्ध में मनु महाराज कहते है कि-

ओं कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः । त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ।।
योऽधीतेहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः । सब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान ।। (मनु.2।81-82)

ओं भूर्भुवः स्वः पूर्वक सावित्री मन्त्र का जप ब्रह्म प्राप्ति का द्वार है। जो अधिकारी प्रतिदिन ओं भूर्भुवः स्व: पूर्वक सावित्री का नियम से तीन वर्ष पर्यन्त जप करता है यह अवश्य ही ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, वह वायु की तरह कामचारी होता है एवं ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होता है।

धर्मराज युधिष्ठिर कहते हैं कि जो ब्राह्मण प्रातः और सायं दोनों संध्याओं में वेदमाता गायत्री का जप करता है यह विधूत कल्मष हो जाता है। प्रतिग्रह के. दान लेने के, सभी दोषों से मुक्त हो जाता है, उसकी पापमयी मनोवृत्तियों का नाश होता है।

विधि यज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः । उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।। (मनु० 2।85)

दर्श पौर्णमासादि यज्ञ से प्रकृत प्रणवादि सहित गायत्री मन्त्र का जप दश गुना अधिक फल देता है। यह जप भी यदि उपांशु (जिसमें होठ न हिलें, केवल जिव्हा साध्य हो) तो शतगुणाधि फलदायी होता है और केवल मानस हो तो सहस्रगुना अधिक फल देने वाला होता है।

मनु महाराज आज्ञा करते हैं कि ब्राह्मण यदि प्रतिदिन कम से कम एक सहस्र (1000) गायत्री का जप करे तो एक मास में ही अभीष्ट सिद्धि को पाता है।

महर्षि विश्वामित्र मंत्र का अर्थ करते हुए कहते हैं कि-

देवस्य सवितुर्यस्य धियो यो नः प्रचोदयात् । भर्गो वरेण्यं तद् ब्रह्म धीमहीत्यथ उच्यते ।। (विश्वामित्र)

'उस तेजस्वी ब्रह्म का हम ध्यान करते है जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करता है।

सूर्यार्घ्य

भगवान आश्वालायन के अनुसार सूर्यार्घ्य दर्भपाणि अर्थात् हाथ में कुश लिए हुए सावित्री मन्त्र से तीन बार (अतिकाल होने पर चार बार) निवेदित करना चाहिए। जल से भरी अंजली को सूर्य के अभिमुख खड़े होकर ओंकार और व्याहृतियों के साथ '**असावादित्यो ब्रह्म।**'कहते हुए अर्घ्य देना चाहिए।

'असावादित्यो ब्रह्म।'

यह आदित्य ही ब्रह्म है इसलिए प्रदक्षिणा पूर्वक घूमते हुए अर्घ्य जल का श्रद्धा से स्पर्श करना चाहिए। यही अर्घ्य निवेदन करना है।

तदन्तर वेदमाता के स्वरूप का निम्न प्रकार ध्यान कर मौन होकर गायत्री जप करे।

गायत्री ध्यानम् (जप पूर्व उपस्थान)

मुक्ता, विदुम, हेम, नील, धवलच्छायैर्मुखैः तीक्ष्णैः।
युक्तामिन्दु निबद्ध रत्नमुकुटां तत्वार्थवर्णात्मिकाम् ।।
गायत्री वरदाभयांकुशकशा शुभ्रंकपालं गुणं ।
शखं चक्रमथारविन्द युगलं हस्तैः वहन्तीं भजे ।।

श्रीमाता गायत्री पांच मुख वाली हैं मुक्ता अर्थात् मोती जैसा विद्रुम अर्थात् मूंगे जैसा, हेम अर्थात् सुवर्ण जैसा, नीलमणि जैसा, और धवल अर्थात् स्वच्छ। आपके तीन नेत्र हैं। आपके रत्न जटित मुकुट पर चन्द्रमा हैं और आपका श्री विग्रह मन्त्र वर्णात्मक है। वरद, अभय, अंकुश, कशा, शूल, कपाल, गुण, शंख, चक्र और कमल क्रमशः जिनके दायें और बांये हाथों में सुशोभित है उन वेदमाता ब्रह्मजननी माता गायत्री का में भजन करता हूँ आह्वान करता हूँ।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशु कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्म लोकम् ।। (अथर्ववेद १९।७१।१)

प्रचोदयात् पदान्तवाली और द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता गायत्री की मैं स्तुति करता हूँ वे मुझको आयु (दीर्घ जीवन) वल (पुरुषार्थ) प्रजा (पुत्रादिक) पशु (गौ, वाहन आदि) कीर्ति (यश) धन (सम्पत्ति वैभव आदि) वैदिक ज्ञान (वेद विद्या और ज्ञान विज्ञान) देकर ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष (बारम्बार जन्म-मरण के चक्र से दूर) अर्थात स्वरुप को उपलब्ध करायें ।

।। सावित्र्यै नमः ।। गायत्र्यै नमः ।।

संक्षिप्त नूतन यज्ञोपवीतधारणप्रयोगः

ब्रह्मचारी एक और गृहस्थ दो यज्ञोपवीत और उत्तरीय के आभाव में तीन यज्ञोपवीत धारण करें। यदि मलमूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत कान पर लपेटना भूल जांय तो नवीन यज्ञोपवीत धारण कर लें। श्रावणी कर्म में पूजन किया हुआ यज्ञोपवीत न हो तो नूतन ही जल से शुद्ध कर एक (या दो) यज्ञोपवीत को दश/ बीस बार गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित कर नीचे लिखे मंत्रों से प्रत्येक सूत्र एवं ग्रंथि में देवताओं का आवाहन करें।

प्रथम तन्तौ ओमकारमावाहयामि। द्वितीयतन्तौ ओम् अग्निमावाहयामि।
तृतीयतन्तौ ओम् सर्पानावाहयामि। चतुर्थतन्तौ ओम् सोममावाहयामि।
पञ्चमतन्तौ ओम् पितृनावाहयामि। षष्ठतन्तौ ओम् प्रजापतिमावाहयामि।
सप्तमतन्तौ ओम् अनिलमावाहयामि। अष्टमतन्ती ओम् सूर्यमावाहयामि।
नवमतन्तौ ओम् विश्वान देवानावाहयामि। ग्रन्थि मध्ये ओम ब्रह्मणे नमः ओम ब्रह्माणमावाहयामि।
ओम विष्णवे नमः ओम विष्णुमावाहयामि। ओम रुद्राय नमः ओम रुद्रमावाहयामि।

यज्ञोपवीतधारण विनियोगः

ओम यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः लिंगोक्ता देवता त्रिष्टुप् छन्द श्रौत स्मार्त कर्मानुष्ठानाधिकार सिद्धयर्थम् नूतन यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः ।

मन्त्रः

ओम यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेजः ।।

तत्पश्चात् पुराने जनेऊ को इस मन्त्र से शिर की ओर से निकाल दें गच्छ सूत्र यथा सुखम्।

वेदमनूच्याचार्यो ऽन्तेवासिषमनुशास्ति ।

उपदेश के पश्चात् आचार्य शिष्यको उपदेश करता है, दीक्षान्त-भाषण देता हुआ कहता है-

सत्यं वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १॥

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकः सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि ॥ २॥

ये के चास्मच्छ्रेयाःसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम् ॥ ३॥

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः ॥ ४॥

एष आदेशः। एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् ॥ ५॥

एतदनुशासनम्।एवमुपासितव्यम्।एवमु चैतदुपास्यम्॥ ६॥

(तैत्तिरीयोपनिषद्)

तुम सत्य बोलना। धर्माचरण करना। स्वाध्यायसे प्रमाद न करना। आचार्यको जो प्रिय हो, उसे दक्षिणा रूपमें देकर गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करना और संततिके सूत्रको न तोड़ना। सत्य बोलनेसे प्रमाद न करना। धर्मपालनमें प्रमाद न करना। जिससे तुम्हारा कल्याण होता हो, उसमें प्रमाद न करना। अपना वैभव बढ़ानेमें प्रमाद न करना। स्वाध्याय और प्रवचनद्वारा अपने ज्ञानको बढ़ाते रहना, देवों और पितरोंके प्रति तुम्हारा जो कर्तव्य है, उसे सदा ध्यानमें रखना। ॥ १॥

माताको, पिताको, आचार्यको और अतिथिको देवस्वरूप मानना, उनके प्रति पूज्य-बुद्धि रखना। हमारे जो कर्म अनिन्दित हैं, उन्हींका स्मरण रखना, दूसरोंका नहीं। जो हमारे सदाचार हैं, उन्हींकी उपासना करना, दूसरोंकी नहीं ॥ २॥

श्रेष्ठ विद्वान् जहाँ बैठे हों, उनके प्रवचनको ध्यानसे सुनना, उनका यथेष्ट आदर करना। दूसरोंकी जो भी सहायता करना, वह श्रद्धापूर्वक करना, किसीको वस्तु अश्रद्धासे न देना। प्रसन्नताके साथ देना, नम्रतापूर्वक देना, भयसे भी देना और प्रेमपूर्वक देना ॥३॥

ऐसा करते हुए भी यदि तुम्हें कर्तव्य और अकर्तव्यमें संशय पैदा हो जाय, यह समझमें न आये कि धर्माचार क्या है तो जो विचारवान् तपस्वी, कर्तव्यपरायण, शान्त और सरस स्वभाववाले विद्वान् हों, उनके पास जाकर अपना समाधान कर लेना और जैसा वे बर्ताव करते हों, वैसा बर्ताव करना ॥ ४॥

यही आदेश है। यही उपदेश है। यही वेद और उपनिषद्का सार है॥ ५॥ यही हमारी शिक्षा है। इसके अनुसार ही अपने जीवनमें आचरण करना ॥ ६॥

----ओम---

संकलन : श्रीविद्या शोधसंस्थानम् ,

यज्ञशाला सत्संग भवन, श्रीजी दरबार, श्री श्रीजी मन्दिर, श्री श्रीजी की ठेक, गतश्रम टीला श्रीधाम- मथुरा